

## वेदों में दार्शनिक अध्यात्मतत्त्व

डॉ० राज पाल

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, सी०आर० किसान महाविद्यालय, जीन्द, हरियाणा, भारत।

### प्रस्तावना

प्रतिसमारंभ में परमगुरु सच्चिदानन्द परमेश्वर मानव कल्याणार्थ वेद का उपदेश करता है। 'सर्वज्ञानमयो हि सः', अनन्ता वे वेदाः, वेद अनन्त ज्ञानराशि है। अतः सब सत्य विधाओं का आदिस्त्रोत है। वेदाश्रय से ही समस्त ज्ञान, विज्ञान का संसार में प्रचार हुआ है। दर्शन विद्या का मूल वेद में विद्यमान है। 'दृश्यतेऽमेनेति दर्शनम्' व्युत्पत्ति के अनुसार सत्-असत् पदार्थों के ज्ञात को दर्शन कहा जाता है। महर्षि व्यास लिखते हैं - परमार्थतस्तु ज्ञानाददर्शनं निवर्तते। (व्यासभाष्य 3/55) एकमेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम् (व्यासभाष्य 2/24) अर्थात् सत्य ज्ञान से अदर्शनम् = अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है अथवा समस्त ज्ञानों में सर्वोत्तम ज्ञान ख्याति = विवेकख्याति है। योगव्यास भाष्य में कहा है - तच्चादर्शनं बन्धकारणं दर्शनान्निवर्तते (योग 2/24) अदर्शन बन्धन का कारण तथा दर्शन मोक्ष का कारण है। मानव तर्क और बुद्धि से जैसे-तैसे जीवन की समस्याओं का समाधान और दुःखों से निवृत्ति का उपाय खोजता है, वैसे-वैसे वह दर्शन के क्षेत्र में पहुँच जाता है। आत्मा क्या है? सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई? ज्ञान का आरम्भ कैसे हुआ? सुख-दुःख क्या हैं? इत्यादि सभी प्रश्नों का समाधान वेद करता है। प्रस्तुत शोधपत्र में वेदों में उपलब्ध दार्शनिक अध्यात्म तत्त्व पर विचार किया जाता है -

### आत्मा:

अत सातत्य गमने (धातु 1/31) धातु से सातिभ्यांमनिन्मनिणी (उ. 4/152) सूत्र से आत्मा शब्द सिद्ध होता है। 'यो ऽतति व्याप्नोति स आत्मा' जो सब जीवादि जगत् में व्यापक है, वह आत्मा है। आत्मा द्विविध है - (एक) जीवन धारण करने से जीवात्मा (दो) 'परमश्वासावात्मा परमात्मा' जो जीवात्माओं से परम=उत्कृष्ट है, वह परमात्मा। यहाँ प्रथम जीवात्मा के विषय में विचार करते हैं। ऋग्वेद में एक मंत्र (1/164/37) में कहा है - न विज्ञानामि नदि वेदगरिम् निण्यः सन्नूढो मनसा चरामि। मैं नहीं जानता, क्या मैं वहीं हूँ? (जो दीखता हूँ, अर्थात् शरीर में तन्त्वत्) होकर मनसा=मनन शक्ति द्वारा वरामि=गति करता हूँ। यहाँ आत्मा के दो गुण ज्ञान और प्रयत्न का वर्णन है। शरीर पंचभौतिक है। भूत स्वयं जड़ एवं ज्ञान शून्य है। इसलिए शरीर भी जड़ और ज्ञान शून्य है। न उसमें स्वयं प्रयत्न करने की सामर्थ्य है और न मनन करने की। शरीर में ये दोनों गुण आत्मा की उपस्थिति में आते हैं। आ च परा च पथिभिश्चरन्तम् (ऋग्वेद 1/177/3) अर्थात् जीव सीधे उल्टे मार्गों से विचरण करने वाला है। यहाँ उल्टी-सीधी चाल का चलने वाला कहकर उसमें इच्छा और द्वेष का निरूपण किया जाता है। इच्छा और द्वेष सुख-दुःख का फल है। जिस वस्तु से सुख हो, उसकी इच्छा और जिससे दुःख हो, उससे द्वेष होता है। अचेतन को सुख-दुःख नहीं होता। ऋग्वेद 1/164/1 में आत्मा को 'जश्न' अर्थात् सुख-दुःख का भोक्ता कहा है। इस प्रकार आत्मा के ज्ञान, प्रयत्न, इच्छा-द्वेष और सुख-दुःख इन छह गुणों का उल्लेख वेद में उपलब्ध होता है। इन्हीं गुणों का महर्षि

गोतम ने 'इच्छाद्वेषप्रयत्न सुखदुःखाज्ञानान्यात्मनो लिंगम्' (न्याय. 1/1/9) इस सूत्र में कहा है। आत्मा के इन लिंगों के अतिरिक्त कुछ लिंग ऐसे हैं जो आत्मा के होने मात्र से स्वतः अर्थात् अनैच्छिक क्रिया के रूप में शरीर में होते हैं -

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणद प्राणीन्निमिषच्च यद्भुवत्।  
तद्धार पृथिवी विश्वरूपं तत्संभूय भवत्येकमेव।।'

जो (भुवत्) अपनी सत्तामात्र से कंपन, पतन, ठहराव (गति), प्राण लेना, न लेना (प्राणापान) चक्षुनिमेषोन्मेष आदि चेष्टाएँ करता है, उसने (विश्वरूपम्) सर्वेन्द्रिय प्रत्यय वाले पार्थिव शरीर का धारण किया है और जिसमें उन प्रत्ययों की संभूति होकर सब ज्ञान एक हो जाता है, वह इन्द्रियान्तर्विकार कहलाता है।

इस मंत्र में वैशेषिक दर्शन कथित प्राणापान, निमेषोन्मेष, गति, इन्द्रियान्तर्विकार लिंगों का वर्णन उपलब्ध होता है।

जीवो भूतस्य चरित स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः। प्रा. 1/164/30 जीवात्मा अगमर्त्य = विनाश रहित है, वह स्वधामिः = अपने कर्मों के कारण मर्त्येन = मरणधर्मा शरीर के कारण मृतस्य = इस मरणधर्मा शरीर अथवा जगत् का सयोनिः = समान स्थान वाला होकर जगत् में आचरति = सब ओर विचरता है। ऐसा वह जीवात्मा परिमाण में बालादेकगणीयरकम् (अथर्ववेद 10/8/25) बाल से भी अति सूक्ष्म अणुरूप है। अप्राच्छेति स्वथया गृभीसोऽमर्त्यो गत्येना सयोनिः। ऋग्वेद 1/164/38 नित्य जीवात्मा मरणधर्मा शरीर के साथ एक स्थान में रहने वाला होता हुआ भोगादि से गुहीत अशुभ कर्म करने नीचे जाता है और शुभ करके ऊपर आता है। आत्मा चित्त है, ज्ञानी है पर सर्वज्ञ नहीं। न इसका कोई विशेष ज्ञान स्थाई रहता है। इसी भाव को कोई जिज्ञासु वेद शब्दों में कहता है - अचिकित्वाश्चिकितुपश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि। ऋग्वेद 1/164/6 न जानता हुआ मैं जानने वालों से पूछता हूँ। जीवात्मा अनेक हैं और प्रति शरीर पृथक्-पृथक् हैं। व्यवस्थातो नाना (वैश्विक 3/2/20) जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् (सांख्य 1/144) अर्थात् जन्मादि व्यवस्था से आत्माएँ अनेक हैं।

### परमात्मा:

आत्मा और परमात्मा दोनों एक नहीं है अपितु दोनों में भेद है। किन्तु दोनों का विचार आपस में इतना संयुक्त है कि शास्त्रों में प्रायः इन दोनों की विवेचना साथ-साथ की गई है। अतः दोनों के भेदाभेद को लेकर अनेक विचारधाराएँ उत्पन्न हुईं। किन्तु वेद दोनों को एक नहीं कहता। अनेक मंत्रों में स्पष्ट आत्मा, परमात्मा का पृथक् रूप में वर्णन आया है - द्वा सुर्पणा सखाया - ऋग्वेद 1/164/20 ब्रह्म और जीव दोनों चेतनता और पालनीय गुणों से सदृश, व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त, परस्पर मित्रता युक्त सनातन अनादि है। त्रयःकेशिन ऋतुथा विचक्षते - ऋग्वेद 1/164/44 तीन प्रकाशमय पदार्थ नियमानुसार विविध रूप में अपना ज्ञान करा रहे हैं। यहाँ ईश्वर, जीव और प्रकृति, तीन अनादि पदार्थों का वर्णन है।

## परमात्मा सिद्धि:

- 1. जगत् का प्रवर्तक:** सम्पूर्ण जगत् की प्रवृत्ति बुद्धिपूर्वक हुई प्रतीत होती है। जगत् ही नियमपूर्ण प्रवृत्ति प्रकृति अथवा जीव द्वारा नहीं हो सकती। इसका कारण परमात्मा है। पावोऽस्येहाभवत्। ततो पिश्वङ्द्व्यक्रामत् साशनानशने अभि। यजुर्वेद 31/4 उस चतुष्पाद का एक पाद संसार में प्रकट हुआ। उससे चेतन-अचेतन सारा जगत् प्रवृत्त हुआ। परमात्मा जगत् का निमित्त कारण है। यही मुक्तियुक्त है।
- 2. धारक:** संसार के विभिन्न पदार्थ परस्पर आकर्षणादि शक्तियों से स्थिर हैं। परन्तु यह आकर्षण का नियम तो बुद्धिपूर्वक है। यह नियम किसने स्थापित किया? वेद कहता है – एकंभेनेमे विष्टभिते द्योश्च भूमिश्च तिष्ठतः। स्कंभ इद सर्वमात्मन्दद्याप्राणन्मिपच्च यत्॥ अथर्ववेद 10/8/21 धारणकर्ता परमेश्वर में आकाश और पृथिवी (सूक्ष्मतम भूत आकाश और स्थूलतम भूत पृथिवी का नाम निर्देश कर सारे भूतों की ओर संकेत है) अलग-अलग स्थिर है। उसी ईश्वर में प्राण लेने और निमेषोन्मेष करने वाला आत्मवान् जगत् है। अर्थात् चेतन-अचेतन जगत् का आधार ईश्वर है।
- 3. निवर्तक:** जहाँ प्रवृत्ति और वृत्ति है, वहाँ निवृत्ति भी है। यह एक ध्रुव सत्य है। संसार का प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न होकर क्षय को प्राप्त करता है। यह क्षय या निवृत्ति भी उस ईश्वर के अधीन है।

कालेनोदेति सूर्यः काले निदिशतेपुनः। अथर्ववेद 19/54/1) परमात्मा से सृष्टिकाल में सूर्य उत्पन्न होता है और प्रलयकाल में उसी में लीन हो जाता है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दो विरुद्ध धर्म हैं। इनका समय और नियमपूर्वक व्यवहार में आना जड़ प्रवृत्ति द्वारा असम्भव है। प्रत्येक परमाणु जड़ और ज्ञान शून्य है। स्वयं बुद्धिपूर्वक संयोग करके वस्तु की उत्पत्ति और समय पर निवृत्ति = नाश नहीं कर सकते। इसे कोई चेतन, सर्वज्ञ, परमसत्ता ही कर सकती है। इसलिए परमात्मा का नियामक के रूप में होना सिद्ध है। वेदान्तशास्त्रकार भी कहते हैं – जन्माद्यस्य यतः। (1/1/2) अर्थात् ब्रह्म वह है जिससे इस जगत् का जन्म, धारण और विनाश होता है।

## कर्मफल संयोजक:

जीव (पिप्पलं स्वाद्वति) संसार में पाप-पुण्यरूप फलों को भोगता है। कर्म जड़ है, स्वयं फल प्राप्ति नहीं कर सकते। कोई फल प्रदाता चाहिए। वेद में कर्मफल प्रदाता के रूप में परमात्मा का वर्णन मिलता है –

ना न एकस्मिन्नामसि मा द्वयोरुत त्रिषु। वर्धीना शूर भुरिपु।<sup>2</sup>  
विभया हि त्वायत उग्रादभिप्रभागिण। दस्यादहमृतीषहः।<sup>3</sup>

जीव कहता है – हे परमात्मन्! हमें एक अपराध पर दण्ड मत दे, दो अपराधों पर दण्ड मत दे और तीन अपराधों पर दण्ड मत दे। हे शूर! अनेक अपराधों पर दण्ड मत दे, क्योंकि तेरे जैसे उग्र, नष्ट-भ्रष्ट करने वाले पापियों के क्षयकारी और सत्य को सहने वाले से मैं डरता हूँ।

को भु मयां अमिथितः सखासखायमग्रवीत। जहा को अस्मदीपते। ऋ. 8/45/51/ परमेश्वर कहता है – हे मनुष्यो! मर्यादा में रहने वालो! पाप न करने वाला कौन मित्र अपने मित्र से कहता है कि अपराध पर मुझे दण्ड मत दे और मैंने किस पाप न करने वाले को दण्ड दिया और कौन धर्मात्मा डरता है?

स्वरूप – ईश्वर एक सत् (एकं सत्, ऋ. 1/164/46) चित्त (चित्तम्, अथर्व. 18/4/14) और आनन्द स्वरूप (अमृतम् अथर्व. 2/1/5) परम सत्ता है। वह निराकार (यजु. 40/4) सर्वशक्तिमान् (शुक्रम् यजु. 40/4) अजन्मा (अजरतद्दृशेक्व/अथर्व. 10/8/81)

अनन्त (अनन्त विततं पुरुष/अथर्व. 10/8/12) निर्विकार (अजएकपात् यजु. 34/53) अनादि (सनातम् अथर्व 10/8/22) अनुपम (अपूर्वणोपिता वाचः अथर्व. 10/8/33, न तत्त्व प्रतिमा अस्ति यजु. 32/3) सर्वाधार (सोऽद्वहंयत सोऽधारयत अथर्व 4/11/7) सर्वेश्वर (त्वमीशिषे सुतानमिद्रत्वमसुतनाम् ऋ. 8/64/3) सर्वव्यापक (ईशावास्यमिदमम् यजु. 40/1) सर्वान्तर्यामी (युष्माकमन्तरं वभूव ऋ. 10/82/7) अजर-अमर (अजरम् ऋ. 6/44/10, अमर्त्य देवं ऋ. 5/14/2) अभय (अभयंकर अथर्व 10/21/1) नित्य (एकपात् यजु. 34/53) पवित्र (पवमानः अथर्व 10/21/1) न्यायकारी (सोऽयंमा अथर्व 13/4/4) दयालु (दयसे विजानन् यजु. 33/18) अभोक्ता (अनश्नन्नन्यो अभिचाशीति ऋ. 1/164/20) और सृष्टिकर्ता (य इदं विश्वं भुवनं जजान अथर्व 13/3/15) है। वह परमेश्वर ही एकमात्र उपास्य (दिव्य गन्धर्वो भुवनस्य यस्यतिरेक एव नमस्यो विश्वीड्यः। अथर्व. 2/2/1) है।

## अन्तकरण:

जीवात्मा के करण अर्थात् कार्य साधन दो प्रकार के हैं – एक बहिष्करण, दूसरा अन्तःकरण। बहिष्करण के अन्तर्गत दशेन्द्रियाँ हैं और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन चारों करणों का नाम अन्तःकरण है। विद्युत की भाँति अन्तःकरण की भी दो-दो तरंगें होती हैं। मन की संकल्प और विकल्प, बुद्धि की सन्देह और निर्णय, चित्त की भूतस्मरण और भावी स्मरण और अहंकार की 'अहमिदम् – मैं ऐसा हूँ तथा ममेददम् – यह मेरा है अर्थात् मैं और मेरा की वृत्तियाँ। वेद के निम्न मंत्र में अन्तःकरण वतुष्टय के नामों का उल्लेख मिलता है। मनसे चेतसे धिय आकृतये.....। अथर्व 6/41/1 मन, चेतस् = चित्त, धी = बुद्धि, आकृति = अहंकृति, ये नाम हैं। परन्तु चारों को मन का नाम देकर उनके गुण कर्मों का निरूपण यजुर्वेद के शिवसंकल्प सूक्त में हुआ है। वहाँ –

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति। विदयेषु धीराः। यदपूर्व यवमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसकल्पमस्तु।

यजुर्वेद 34/2 जिससे कर्मनिष्ठ, धेययुक्त, मनीषी यत्र अर्थात् यजनीय लंगमनीय ज्ञान क्षेत्र में कर्मों को तथा संघर्ष क्षेत्रों में कर्मों को करते हैं। जो अपूर्व सामर्थ्ययुक्त विलक्षण अत्यन्त ग्राह्य और प्राणियों के अन्तर में स्थिर मन है। वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो।

सुषारथिरश्चानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।  
हृत्यग्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठ.....।<sup>4</sup>

जो मन हृदय में स्थित पूर्ण बलवान् अत्यन्त वेगवान् हुआ। उत्तम सारथि सम लगामों से बलवान् घोड़ों की भाँति मनुष्यों को जहाँ-तहाँ निरन्तर ले जाता है। सूक्त के अन्य मंत्रों में अलग-अलग के सम्बन्ध में मन नाम से ही चारों के गुणों-कर्मों का वर्णन है –

मन के सम्बन्ध में:

यज्जाग्रतो दूरमुदेति देवं तदुसुप्तस्य तथैवेति।  
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं।<sup>5</sup>

जाग्रतावस्था में जो मन दूर-दूर जाता दिव्य गुण रहता है, सोते हुए का वही मन सुषुप्ति को प्राप्त होता या स्वप्न में दूर-दूर जाने के समान व्यवहार कर ले, प्रकाशवर्त का ज्योतिषयों का ज्योति है। बुद्धि के विषय में:

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजासु।  
यरमान् ऋते किञ्चन कर्म क्रियते.....।<sup>6</sup>

जो प्रज्ञान, प्रज्ञा, बुद्धि तथा चेतस् = चिताने वाला और धृति =

निश्चयात्मकवृत्ति वाला है, जो मनुष्यों में भीतर प्रकाश रहित और नाश रहित है, जिसके बिना कोई, कुछ भी कर्म नहीं किया जाता। चित्त के सम्बन्ध में:

येनदम्भूतं भुवनम्भविष्यत्परिगृहीतमृतेन सर्वम्।  
येन यज्ञस्तायते सप्त होता.....<sup>7</sup>

जिस स्थिर धर्म वाले चित्त रूप मन से यह भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् वृत्त या ज्ञान गृहीत है, जो नाश रहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलके सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है। जिसमें ज्ञान और क्रिया हैं। जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रिय बुद्धि और आत्मा योगरूप यज्ञ को विस्तृत करते हैं। अहंकार के सम्बन्ध में:

यस्मिन्नुचः साम यजुष्यषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवासः।  
यरिगश्चित्तं सर्वगोतं प्रजानां.....<sup>8</sup>

जिसमें ऋचाएँ यजुर्मन्त्र, साम और इनके अन्तर्गत होने से अथर्ववेद के मंत्र रथ की नाभि में अरों की भाँति प्रतिष्ठित हैं, जिसमें सर्वज्ञ सर्वव्यापक प्रजा का साक्षी चेतन परमात्मा विदित होता है –

### मोक्षः

तदत्यन्तविमोदतेऽपवर्गः॥ (न्यायः 1/1/22) याचना रूप दुःख का अत्यन्त अभाव होकर आनन्द की प्राप्ति होना अपवर्ग = मोक्ष है। अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरायन्त पुरुषार्थः॥ (सांख्य 1/1) अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्या (सांख्य 6/5) तीन प्रकार के आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दुःखों की निवृत्ति परम पुरुषार्थ है, क्योंकि नितान्त दुःखनिवृत्ति से ही मानव जीवन अत्यन्त की कृतकार्यता या सफलता है। वेद ने कहा है – उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् (ऋ. 7/59/12) में खरबूजे फल के बन्धन से छूटने के समान मृत्यु से छूटु अमृत से नहीं। ब्रह्म निर्विकार है, एकरस है, आनन्द स्वरूप है। इसके विपरीत मनुष्य की मुक्ति परिश्रम साध्य है, स्वाभाविक नहीं। वह जितना परमात्मा के निकट जाता है, उतना अधिक आनन्द का अनुभव करता है। मुक्ति की दशा में आत्मा-परमात्मा का अत्यन्त सामीप्य मिला है। वेद में आया है –

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदधाभि स्वरन्ति।  
इन्ते विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स ना धीरः पाकमत्रा विदेशः॥<sup>9</sup>

जिसमें सुकर्मकारी लो ज्ञान से अमृत के प्रसाद को निरन्तर प्राप्त करने की घोषणा करते हैं, वह समस्त संसार का स्वामी और रक्षक अपने ज्ञान में रमने वाला मुझ परिपक्व (यम-नियम से पके हुए) आत्मा के प्रविष्ट है, अर्थात् मुझे उसका साक्षात्कार होता है। आगे फिर कहा है – तन्नो नशयः पितरं न वेद। ऋ. 1/164/22/ वह उस (प्रसाद) को प्राप्त न करेगा, जो परमपिता को नहीं जानता। यजुर्वेद में भी कहा है – तनेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। उस परमपुरुष को जानकर ही मृत्यु से परे होता है। मुक्ति का और कोई मार्ग नहीं। मुक्ति का साधन परमात्म ज्ञान है जो अष्टांग योग से ही प्राप्य है। वेद कहता है – ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुतः। ऋ. 9/113/2/ अर्थात् सद्विचार सत्योच्चार और सदाचार द्वारा मनुष्य का परिपक्व होना आवश्यक है।

### कर्मज्ञान समुच्चयः

ऋ. 1/164/21 में जहाँ अमृत की प्राप्ति 'विदथा' कही है, यहाँ प्राप्त करने वाले को 'सुगर्ण' अर्थात् शोभन कर्म युक्त कहा है।

फिर 'विदथा' का अर्थ ज्ञान तथा यज्ञ से है। वेद मार्ग में न ज्ञान हेय है न यज्ञ। दोनों 'विदथ' होकर मुक्ति के साधन हैं। यही यजुर्वेद में अन्यत्र कहा है –

विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभव राह।  
अविद्याया मृत्युं तीर्त्वा विद्यायाऽमृतमश्नुते॥<sup>10</sup>

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तरके विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करता है। मुक्ति का स्वरूपः यत्र कामा निकामाश्च यत्र त्रघ्नस्यविष्टपम्।

स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिठेव॥<sup>11</sup>

जहाँ कामना का कामनापन दब जाता है, जहाँ आत्मावस्थिति की पराकाष्ठा है, जहाँ सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्र आत्म तृप्ति है, वहाँ है अमृत प्रभो! मुझे अमर बना। इन्द्रियपति संयमी आत्मा के लिए सब ओर इस सुख का प्रवाह हो। मुक्ति शान्त है: मुक्ति शान्त है, जन्य होने से। वेद ने कहा है –

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाग।  
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं दृशेयं मातरं च॥  
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।  
स ना मह्या अदितये पुनर्वात् पितरे च दृशेयं मातरं च॥<sup>12</sup>

हम मुक्त जीव सुखस्वरूप के गुणों का सम्यक मनन करते हैं। वह हमें अपनी कर्मफल व्यवस्था के अधीन कर माता-पिता के दर्शन कराए।

इस लघु लेख में स्थानाभाव के कारण मात्र आत्मा-परमात्मा, अन्तःकरण और मुक्ति विषयों पर ही वैदिक परिप्रेक्ष्य में विचार किया गया है।

### संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद 10/8/11
2. वही 8/45/94
3. वही 8/45/35
4. यजुर्वेद 34/6
5. वही 34/1
6. वही 34/3
7. वही 34/4
8. वही 34/5
9. ऋग्वेद 1/164/21
10. यजुर्वेद 40/44
11. ऋग्वेद 9/113/10
12. ऋग्वेद 1/124/1-2